बाइबल को जानो

आराधना

अडवांस्ड बाइबल स्टडी

लेखक: जैरी बेट्स

अनुवादक: अरनेस्ट गिल

बाइबल को जानो

आराधना

अडवांस्ड बाइबल स्टडी

लेखकः जैरी बेट्स
अनुवादकः अरनेस्ट गिल

WORSHIP

Author: Jerry Bates
Hindi Translation by: Earnest Gill

Published by:
Earnest Gill (Director)
THE NORTH INDIA BIBLE COLLEGE,
P.O. BOX NO. 44, CHANDIGARH-160017
email: hindibiblecourse@gmail.com

Printed at :
Azad Offset Printers (P) Ltd.
144, Press Site, Industrial Area, Phase-1, Chandigarh
PH. : 0172-4611489, 2656144, 2657144

Private Circulation Only

परिचय

आपके हाथ में यह पुस्तक इस उम्मीद से दी गई है कि आप इसे पढ़कर बाइबल की वाचाओं के सम्बन्ध में अच्छी तरह से जान पाएं।

प्रेरितों के काम 8 अध्याय में हम पढ़ते हैं कि जब कूश देश की रानी का खजांची यशायाह नबी की पुस्तक में से पढ़ रहा था जो फिलिप्पुस द्वारा उसके पास जाकर उससे यह पूछने पर कि "तू जो पढ़ रहा है क्या उसे समझता भी है?" जवाब में उसने कहा था कि "जब तक कोई मुझे न समझाए तो मैं कैसे समझूं?" बाइबल बताती है कि इसके बाद उसने फिलिप्पुस से विनती की कि वह चढ़कर उसके पास बैठे। फिलिप्पुस ने उसके साथ रथ पर बैठकर उसे प्रभु का वचन बेहतर ढंग से समझाया था जो आज तक मिसाल है। इस कहानी को आप प्रेरितों के काम 8:26 से पढ़ सकते हैं।

बाइबल के गम्भीर छात्र आज भी मानते हैं कि अच्छे टीचर की सहायता से बाइबल के महत्वपूर्ण विषयों का समझना आसान हो जाता है। भाई जैरी बेट्स का शुमार उन अच्छे टीचरों में होता है जो अपने विषय को समझते हैं और उन्हें बेहतर ढंग से समझाने की सलाहियत रखते हैं। मैं उन्हें पिछले एक दशक से अधिक समय से जानता हूँ और बाइबल को सिखाने की उनकी ललक से प्रभावित हूँ। उनकी इच्छा यही रहती है कि लोगों को क्लास के रूप में सिखा सकें और वचन से सम्बन्धित उनके मन में उठने वाले प्रश्नों का उत्तर व्यक्तिगत रूप में दे सकें। मेरे लिए यह आशीष की बात है कि मैं उनकी पुस्तकों **बाइबल की वाचाएं, आराधना** और **परमेश्वरत्व** पर परमेश्वर के वचन की उनकी समझ को आप तक पहुंचा पाया हूँ।

आराधना पर प्रस्तुत पुस्तक में क्लासरूम में सिखाए जाने के ढंग को ही अपनाया गया है। इसके 5 पाठ हैं जिनमें प्रत्येक पाठ के बाद प्रश्न दिए गए हैं। हमने उन प्रश्नों को पुस्तक के अंत में रखा है। आपके तीनों पुस्तकों में से, हर पाठ के प्रश्न के उत्तर हमें भेजने पर आपको सुन्दर सर्टिफिकेट डाक द्वारा भेजा जाएगा।

हमारी प्रार्थना है कि इस पुस्तक के पढ़ने के द्वारा आपको आशीष मिले।

प्रभु के लिए आपका सेवक
अरनेस्ट गिल
P.O. Box No. 44,
Chandigarh-160017

आराधना

विषय

1. आराधना क्या है? 1

2. आराधना कहाँ करनी चाहिए? 5

3. प्रार्थना 9

4. प्रभु–भोज 14

5. गाना 18

6. पवित्र लोगों का चंदा 22

आराधना क्या है?

मसीही लोगों की सबसे महत्वपूर्ण गतिविधियों में से एक गतिविधि आराधना का कार्य है। आधुनिक आराधना में बहुत से ऐसे कार्य हैं जिन्हें लोगों ने परमेश्वर के वचन के अधिकार के बिना जोड़ लिया है। परन्तु कुलुस्सियों 3:17 में पौलुस लिखता है, *"और वचन से या काम से जो कुछ भी करो सब प्रभु यीशु के नाम से करो, और उसके द्वारा परमेश्वर पिता का धन्यवाद करो।"* यीशु के नाम में कुछ करने का अर्थ उसके अधिकार से उसे करना होता है। इसका अर्थ यह है कि यीशु के अनुसार, आराधना, जो बाइबल के अधिकार के बिना की गई है, वह "व्यर्थ" आराधना है (मत्ती 15:9)। इस कारण हमें यह सुनिश्चित करना आवश्यक कि बाइबल के अनुसार आराधना में क्या-क्या होता है और यह यकीनी बनाना आवश्यक है कि हमारी आराधना परमेश्वर को स्वीकार्य हो।

आराधना क्या है?

नये नियम में आम तौर पर जिस शब्द का अनुवाद आराधना किया जाता है उसका अर्थ श्रद्धा, दण्डवत करना या गहरा सम्मान दिखाना है। यह श्रद्धा या आदर का संकेत देता है? आराधना से सम्बन्धित बेहतरीन आयतें यूहन्ना 4:23, 24 हैं, *"परन्तु वह समय आता है, वरन् अब भी है, जिसमें सच्चे भक्त पिता की आराधना आत्मा और सच्चाई से करेंगे, क्योंकि पिता अपने लिये ऐसे ही आराधकों को ढूंढता है। परमेश्वर आत्मा है, और अवश्य है कि उसकी आराधना करनेवाले आत्मा और सच्चाई से आराधना करें।"* यूहन्ना सच्चे आराधकों की बात करता है, इसका अर्थ यह हुआ कि झूठे आराधक होते हैं। हम परमेश्वर पिता की आराधना करते हैं। यह घनिष्ठता और प्रेम को दर्शाता है (इफिसियों 1:3; लूका 11:2-4)। परन्तु हम उस श्रद्धा और आदर को न भूलें जिसके परमेश्वर योग्य है। सच्ची आराधना में दो बातें होनी आवश्यक हैं जिनमें एक तो आत्मा है और दूसरा सच्चाई। आत्मा से भरी आराधना दिल से की गई सच्ची आराधना है और सच्चाई से की गई आराधना करने का अर्थ परमेश्वर की आराधना वैसे ही करना है जैसे उसका वचन बताता है। यीशु ने कहा, *"तेरा वचन सत्य है"* (यूहन्ना 17:17)।

इसका अर्थ यह हुआ कि सच्चाई से आराधना करने का अर्थ वैसे आराधना करना है जैसे उसके वचन में बताया गया है। आराधना परमेश्वर को महिमा देने का कार्य है। हमें इस बात को ध्यान में रखना आवश्यक है कि हम परमेश्वर की आराधना कर रहे हैं न कि अपने आप की। एक प्रचारक ने आराधना की परिभाषा "परमेश्वर को वह मानना जो वह है, अपने

आपको वह मानना जो आप हैं और उसी अनुसार प्रतिक्रिया दिखाना'' के रूप में दी है। यह सरल परिभाषा है और इस पाठ में इसका इस्तेमाल आराधना को समझने के आधार के रूप में किया जाएगा। आराधना की सबसे पहली बात यह समझना है कि परमेश्वर कौन है। परमेश्वर आकाश और पृथ्वी का और जो कुछ इनमें है, सबका सृष्टिकर्त्ता है (उत्पत्ति 1:1; कुलुस्सियों 1:16)। वही एकमात्र सच्चा परमेश्वर है (निर्गमन 20:2, 3)। वह बिल्कुल खरा, धर्मी और सच्चा है (मरकुस 10:18)। यशायाह इसी पहलू पर जोर देता है जब वह उसे *''इस्राएल का पवित्र''* कहता है। यशायाह परमेश्वर के सम्बन्ध में 29 बार ''पवित्र'' शब्द का इस्तेमाल करता है (उदाहरण के लिए यशायाह 1:4; 43:15)। यह बहुत बड़ा विरोधाभास है। वह पवित्र हमारे मध्य में है। *''हे सिय्योन में बसने वाली, तू जय जय कार कर और ऊंचे स्वर से गा, क्योंकि इस्राएल का पवित्र तुझ में महान है''* (यशायाह 12:6)।

दूसरा, हम देखते हैं कि हम कौन हैं। रोमियों 3:10-12 में मनुष्य की दशा को संक्षिप्त करने के लिए पौलुस भजन 14:1-3 और भजन 15:1-3 से दोहराता है। *''जैसा लिखा है: 'कोई धर्मी नहीं, एक भी नहीं। कोई समझदार नहीं; कोई परमेश्वर का खोजनेवाला नहीं। सब भटक गए हैं, सब के सब निकम्मे बन गए हैं; कोई भलाई करने वाला नहीं, एक भी नहीं' ''* (रोमियों 3:10-12)। अपने विश्वास की बड़ी परीक्षा से गुजरने और निकल जाने ने बाद भी अय्यूब कहता है, *''इसलिए मुझे अपने ऊपर घृणा आती है और मैं धूल और राख में पश्चात्ताप करता हूं''* (अय्यूब 42:6)। विश्वासयोग्य नबी यशायाह को जब परमेश्वर की ओर से दर्शन मिला तो उसने यह मान लिया कि वह तो *''अशुद्ध होठों वाला मनुष्य''* है (यशायाह 6:5)। इस प्रकार हम देखते हैं कि लोगों के सामने हम अपने आपको चाहे भले मनुष्यों के रूप में दिखाते रहें, पर परमेश्वर की दृष्टि में हम पापी ही हैं। परमेश्वर का मानक सिद्धता है जो कि यकीनन भलाई की मनुष्य के मानव से कहीं बेहतर है। इस प्रकार आराधना में व्यक्ति को अपने पापी होने का और परमेश्वर तक पहुंचने के अयोग्य होने का पता चलता है (लूका 5:8; यशायाह 6:5)। यह आराधक के मन में आभार और विनम्रता को बढ़ावा देता है।

तीसरी बात, हमें सही प्रतिक्रिया देनी आवश्यक है। सही जवाब क्या है? हमारे सही जवाब में बहुत सी बातें आ जाती हैं। (1) हम में निर्भरता और विनम्रता की भावना होनी आवश्यक है। परमेश्वर हम सब का सृष्टिकर्त्ता है और हम सब उसी में से निकले हैं। (2) हमारा व्यवहार धन्यवाद करने वाला होना चाहिए। बाइबल बार-बार मनुष्य को धन्यवाद करने के लिए प्रोत्साहित करती है *''अब जो ऐसा सामर्थी है, कि हमारी बिनती और समझ से कहीं अधिक काम कर सकता है, उस सामर्थ के अनुसार जो हम में कार्य करता है''* (इफिसियों 3:20)। (3) हमें आनन्द से भी भरना चाहिए। *''प्रभु में सदा आनन्दित रहो; मैं फिर कहता हूं, आनन्दित रहो''* (फिलिप्पियों 4:4)। *''परमेश्वर जो आशा का दाता है तुम्हें विश्वास करने में सब प्रकार के आनन्द और शान्ति से परिपूर्ण करे, कि पवित्र आत्मा की सामर्थ्य से तुम्हारी आशा बढ़ती जाए''* (रोमियों 15:13)। (4) हमें उसकी इच्छा को मानते हुए अपने जीवनों का समर्पण करना आवश्यक है, *''इसलिये हे भाइयो, मैं तुम से परमेश्वर की दया स्मरण दिला कर विनती करता हूं कि अपने शरीरों को जीवित, और पवित्र, और*

परमेश्वर को भावता हुआ बलिदान करके चढ़ाओ। यही तुम्हारी आत्मिक सेवा है'' (रोमियों 12:1)। हमें सही ढंग से प्रार्थना करना ही काफी नहीं है बल्कि इससे हमारा जीवन भी पवित्र होना आवश्यक है। हम अपनी आराधना को जीने के अपने ढंग से अलग नहीं कर सकते। यदि हमारी आराधना के साथ हमारा जीवन पवित्र नहीं है तो परमेश्वर हमारी आराधना से नफरत करेगा। *''मैं तुम्हारे पर्वों से बैर रखता, और उन्हें निकम्मा जानता हूं, और तुम्हारी महासभाओं से मैं प्रसन्न नहीं। चाहे तुम मेरे लिये होमबलि और अन्नबलि चढ़ाओ, तौभी मैं प्रसन्न न होऊंगा, और तुम्हारे पाले हुए पशुओं के मेलबलियों की ओर न ताकूंगा''* (आमोस 5:21, 22)। आमोस के समय में समस्या यह नहीं थी कि इस्राएली लोग आराधना गलत ढंग से कर रहे थे बल्कि उनकी आराधना से उनका जीवन पवित्र नहीं हो रहा था जिससे परमेश्वर ने उनकी आराधना को स्वीकार करने से इनकार कर दिया।

आराधना के उद्देश्य

बाइबल बताती है कि आराधना के कई उद्देश्य होते हैं। बेशक मुख्य उद्देश्य परमेश्वर को महिमा देना ही है: *''सो तुम चाहे खाओ, चाहे पीओ, चाहे जो कुछ करो, सब कुछ परमेश्वर की महिमा के लिए करो''* (1 कुरिन्थियों 10:31)। स्तुति और महिमा के योग्य केवल परमेश्वर है। हम जो कुछ भी करते हैं उससे यह पता चलना चाहिए कि परमेश्वर हमारे भीतर है और आराधना में इसे दिखाने से बेहतर कोई ढंग नहीं है। इफिसियों के नाम पत्र में पौलुस ने प्रार्थना की, *''कलीसिया में और मसीह यीशु में उस [परमेश्वर] की महिमा पीढ़ी से पीढ़ी तक युगानुयुग होती रहे''* (इफिसियों 3:21)।

दूसरा उद्देश्य साथ के मसीही लोगों को सुधारना है। *''और एक दूसरे के साथ इकट्ठा होना न छोड़ें, जैसे कि कितनों की रीति है, पर एक दूसरे को समझाते रहें; और ज्यों ज्यों उस दिन को निकट आते देखो, त्यों त्यों और भी अधिक यह किया करो''* (इब्रानियों 10:25)। फिर से यह इकट्ठा होने के महत्व पर जोर देता है क्योंकि बिना किसी शक के, बिना इकट्ठा हुए हम एक दूसरे को कभी प्रोत्साहित नहीं कर सकते। 1 कुरिन्थियों 14:26 में पौलुस ने कुरिन्थियों से भी कहा था कि सब बातें सुधार के लिए की जाएं। 1 कुरिन्थियों 14 में *''उन्नति''* या *''सिखाने''* के लिए शब्दों का इस्तेमाल सात बार हुआ है। पौलुस आत्मिक दानों सहित आराधना में पाई जाने वाली बुराइयों को सुधार रहा था। क्योंकि सुधार के लिए निर्देश और स्पष्ट भाषा का होना आवश्यक है। तौभी हम देखते हैं कि मुख्य उद्देश्यों में से एक, साथी मसीहियों को सुधारना है।

आराधना का एक और उद्देश्य मसीह की देह के रूप में या अपने उद्धार और अपनी एकता का मिलकर अभिनन्दन करना प्रचार करना है। *''वह धन्यवाद का कटोरा, जिस पर हम धन्यवाद करते हैं, क्या मसीह के लोहू की सहभागिता नहीं? वह रोटी जिसे हम तोड़ते हैं, क्या वह मसीह की देह की सहभागिता नहीं। इसलिए, कि एक ही रोटी है सो हम भी जो बहुत हैं, एक देह हैं: क्योंकि हम सब उसी एक रोटी में भागी होते हैं''* (1 कुरिन्थियों 10:16, 17)। अगले अध्याय में पौलुस जब प्रभु-भोज में पाई जाने वाली खामियों में सुधार कर रहा था तो आयत 26 में उसने लिखा *''क्योंकि जब कभी तुम यह रोटी खाते, और*

इस कटोरे में से पीते हो, तो प्रभु की मृत्यु को जब तक वह न आए, प्रचार करते हो'' (1 कुरिन्थियों 11:26)। इसी प्रकार जब हम प्रभु-भोज में भाग लेते हैं, तो हम साथी मसीहियों को एक दूसरे के उद्धार और उस एकता को स्मरण दिलाने के साथ-साथ जो मसीह की देह के अंगों के रूप में हमें मिली है, किसी भी गैर मसीही को जो आराधना में भाग ले रहा हो, प्रचार करते हैं या उसे सिखाते हैं।

सारांश

इस पाठ में हमने सीखा है कि आराधना क्या है और आराधना के कुछ उद्देश्य क्या हैं। आधुनिक आराधना में पाई जाने वाली अधिकतर बुराइयां इसी कारण हैं क्योंकि हम ने आराधना के उद्देश्य को भुला दिया है और इसे अपने आप को प्रसन्न करने वाली चीज में बदल दिया है। अगले पाठों में हम उन सभी कार्यों पर विस्तार से चर्चा करेंगे जो परमेश्वर की हमारी आराधना में शामिल हैं।

आराधना कहां करनी चाहिए?

पुरुष हों या स्त्रियां वे शुरू से आराधना में परमेश्वर तक पहुंच करते रहे हैं। बिल्कुल आरम्भ में ही हम कैन और हाबिल के परमेश्वर के पास भेंट लाने को देखते हैं (उत्पत्ति 4:15)। हम पढ़ते हैं कि भेंट चाहे दोनों लेकर आए थे परन्तु परमेश्वर ने केवल हाबिल के बलिदान को ही स्वीकार किया था। पुरखाओं के युग के दौरान प्रत्येक परिवार आराधना में परमेश्वर के सामने अपने-अपने बलिदान लेकर आता था। जब सीनै पहाड़ पर परमेश्वर ने इस्राएल की संतान के साथ वाचा बांधी तो उसने स्पष्ट कर दिया कि हर आराधना, याजकों के द्वारा जो कि लेवी के गोत्र के थे, तम्बू में ही होनी चाहिए। बाद में शाऊल राजा से राज्य के आरम्भ की स्थापना के साथ अस्थाई तम्बू की जगह यरूशलेम में मन्दिर बना दिया गया था। इस प्रकार उसके बाद आराधना यरूशलेम में ही होती थी। परन्तु मसीह द्वारा स्थापित वाचा के अधीन आराधना कहीं पर भी की जा सकती है। यूहन्ना 4 अध्याय में यीशु के सामरियों के कुएं पर महिला से बात करते हुए उस महिला ने पूछा था कि आराधना करने का सही स्थान कौन सा है। उसके पूर्वजों का कहना था कि सामरिया ही सही जगह है जबकि यहूदियों का दावा था कि आराधना की सही जगह यरूशलेम है। *"यीशु ने उससे कहा, 'हे नारी, मेरी बात का विश्वास कर कि वह समय आता है कि तुम न तो इस पहाड़ पर पिता की आराधना करोगे, न यरूशलेम में'"* (यूहन्ना 4:21)। अन्य शब्दों में, हम आराधना किस जगह करते हैं इसका कोई महत्व नहीं है। हम परमेश्वर के लोग जो कि दुनिया भर में हर जाति में से हैं, परमेश्वर की आराधना, जिस भी देश में रहते हैं, वहीं पर कर सकते हैं।

आराधना कब करनी चाहिए?

मूसा की व्यवस्था के काल के दौरान इस्राएलियों को सब्त के दिन आराधना करने की आज्ञा दी गई थी। *"तू विश्रामदिन को पवित्र मानने के लिये स्मरण रखना। छः दिन तो तू परिश्रम करके अपना सब काम काज करना; परन्तु सातवां दिन तेरे परमेश्वर यहोवा के लिये विश्रामदिन है। उस में न तो तू किसी भांति का काम काज करना, और न तेरा बेटा, न तेरी बेटी, न तेरा दास, न तेरी दासी, न तेरे पशु, न कोई परदेशी जो तेरे फाटकों के भीतर हो। क्योंकि छः दिन में यहोवा ने आकाश, और पृथ्वी, और समुद्र, और जो कुछ उन में है, सब को बनाया, और सातवें दिन विश्राम किया; इस कारण यहोवा ने विश्राम दिन को आशीष दी और उसको पवित्र ठहराया"* (निर्गमन 20:8-11)। यह वाचा केवल इस्राएलियों को दी गई थी। बाद में मूसा ने लिखा, *"हमारे परमेश्वर यहोवा ने तो होरेब पर हम से वाचा बान्धी। इस वाचा को यहोवा ने हमारे पितरों से नहीं, हम ही से बान्धा, जो यहां आज के दिन जीवित*

हैं'' (व्यवस्थाविवरण 5:2-3)। यह वाचा जिसमें सब्त के दिन को मानना शामिल था केवल इस्राएलियों और उसकी संतान के साथ बांधी गई थी न कि अन्यजातियों या उनके पूर्वजों के साथ।

यीशु ने इस वाचा को अपने क्रूस पर कीलों से जड़ दिया। *''और विधियों का वह लेख जो हमारे नाम पर, और हमारे विरोध में था मिटा डाला; और उस क्रूस पर कीलों से जड़कर सामने से हटा दिया है''* (कुलुस्सियों 2:14)। रोमियों 7 में पौलुस ने समझाया कि हम व्यवस्था के लिए मर गए ताकि किसी दूसरे (यानी मसीह) के साथ विवाह कर सकें। फिर आयत 7 में उसने साफ-साफ *''लालच मत कर''* वाली आज्ञा को उन आज्ञाओं में से एक बताया जिसके लिए हम मर गए थे। यह उन्हीं दस आज्ञाओं में से एक है (निर्गमन 20:17)। यदि कोई दस आज्ञाओं में से एक आज्ञा के लिए मर गया, तो उसके लिए सब आज्ञाओं के लिए मरना आवश्यक है। इसलिए अब हमें सब्त के दिन को पवित्र मानने और सब्त के दिन आराधना करने की आज्ञा नहीं दी गई है।

नई वाचा के अधीन हम देखते हैं कि हमें सप्ताह के पहले दिन आराधना करना आवश्यक है। आरम्भिक कलीसिया शुरू से सप्ताह के पहले दिन आराधना करती थी। पौलुस त्रोआस की कलीसिया के साथ सप्ताह के पहले दिन ही मिला था (प्रेरितों 20:7)। बेशक वह नगर में सात दिन तक रहा था, जो कि इस बात का संकेत है कि पौलुस को सुनने जाने के लिए यह विशेष प्रार्थना सभा नहीं थी बल्कि यह आराधना का सामान्य और प्रचलित दिन था। वे *''रोटी तोड़ने के लिए इकट्ठे हुए''* (यानी प्रभु-भोज में भाग लेने के लिए, न कि पौलुस से वचन सुनने के लिए)। वह सब्त के दिन वहां था परन्तु वह उनसे सप्ताह के पहले दिन आराधना में मिला। पौलुस ने कुरिन्थुस की कलीसिया को सप्ताह के पहले दिन चंदा इकट्ठा करने की आज्ञा दी (1 कुरिन्थियों 16:2), जो कि फिर से इस बात का संकेत है कि यह आराधना का प्रचलित दिन था।

यह केवल स्वाभाविक है कि आरम्भिक कलीसिया सप्ताह के पहले दिन आराधना करती थी क्योंकि कलीसिया की स्थापना के लिए होने वाली सब महत्वपूर्ण बातें सप्ताह के पहले दिन ही हुई थीं। यीशु मुर्दों में से सप्ताह के पहले दिन जी उठा था। स्त्रियां सुबह-सुबह खाली कब्र पर सप्ताह के पहले दिन ही आई थीं (लूका 24:1)। कब्र बेशक खाली थी पर झलकते वस्त्र पहने दो पुरुषों ने (24:4) उन्हें यीशु के शब्द याद दिलाए थे कि *''अवश्य है, कि मनुष्य का पुत्र पापियों के हाथ में पकड़वाया जाए, और क्रूस पर चढ़ाया जाए, और तीसरे दिन जी उठे''* (लूका 24:7)। यीशु को शुक्रवार के दिन क्रूस पर चढ़ाया गया था इसलिए समय की यहूदियों की गणना के ढंग के अनुसार जिसमें वे दिन के किसी भी भाग की गणना पूरे दिन के रूप में करते थे, तीसरा दिन रविवार ही होना था, उसी दिन, दो जन इम्माऊस नामक एक गांव को जा रहे थे (लूका 24:13), जब यीशु ने उन्हें दर्शन दिया था पर वे पहचान नहीं पाए थे कि वह कौन है। बातचीत के दौरान ये लोग कहने लगे, *''परन्तु हमें आशा थी कि यही इस्राएल को छुटकारा देगा। इन सब बातों के सिवाय इस घटना को हुए तीसरा दिन है''* (लूका 24:21)। इस प्रकार हम देखते हैं कि मसीही लोगों को मालूम था कि मसीह ने भविष्यवाणी की हुई थी कि वह सप्ताह के पहले दिन जी उठेगा।

यीशु सप्ताह के पहले दिन अपने चेलों से मिला (यूहन्ना 20:19), परन्तु तब थोमा वहां नहीं था। आठ दिन बाद, पहले दिन (20:26), यीशु फिर से अपने चेलों के सामने प्रकट हुआ, इस बार थोमा भी उनके साथ था। कलीसिया पिन्तेकुस्त के दिन बनी, जो कि सप्ताह के पहले दिन ही आता था (लैव्यव्यवस्था 23:15–16)। प्रेरितों पर पवित्र आत्मा इसी दिन उतरा था और यशायाह 2:2–4 की भविष्यवाणी के पूरा होने की बात पहले सुसमाचार संदेश में इसी दिन दी गई। इसी दिन 3,000 लोगों ने बपतिस्मा लिया था और इस प्रकार कलीसिया स्थापित हुई थी (प्रेरितों 2:41)। उसके बाद से हम कलीसिया के सप्ताह के पहले दिन आराधना करने की बात ही पढ़ते हैं, बेशक आरम्भ में मसीही लोग सब यहूदी थे, जो सब्त के दिन आराधना किया करते थे।

प्रचार करना या सिखाना

हमारी आराधना का एक महत्वपूर्ण भाग परमेश्वर के वचन का अध्ययन करना होता है। पर प्रचलित रूप में एक व्यक्ति परमेश्वर के वचन में से सरमन या उपदेश देता है। परन्तु परमेश्वर के वचन का इकट्ठे अध्ययन करने का यही एक तरीका नहीं है। महत्वपूर्ण बात यह है कि परमेश्वर का वचन सिखाया जाए ताकि कलीसिया उन्नति कर सके। बहुत सी आयतें परमेश्वर के वचन की शिक्षा पर जोर देती हैं। पौलुस त्रोआस की कलीसिया को आधी रात तक वचन सुनाता रहा (प्रेरितों 20:7)। *"इसलिए मैं ने तीमुथियुस को जो प्रभु में मेरा प्रिय और विश्वासयोग्य पुत्र है, तुम्हारे पास भेजा है, और वह तुम्हें मसीह में मेरा चरित्र स्मरण कराएगा, जैसे कि मैं हर जगह हर एक कलीसिया में उपदेश करता हूं"* (1 कुरिन्थियों 4:17)। *"परमेश्वर और मसीह यीशु को गवाह करके, जो जीवतों और मरे हुओं का न्याय करेगा, उसे और उसके प्रगट होने, और राज्य की सुधि दिलाकर मैं तुझे चिताता हूं। कि तू वचन को प्रचार कर; समय और असमय तैयार रह, अब प्रकार की सहनशीलता, और शिक्षा के साथ उलाहना दे, और डांट, और समझा"* (2 तीमुथियुस 4:1–2)।

परमेश्वर ने उद्धार दिलाने वाले अपने सुसमाचार को फैलाने के लिए प्रचार के माध्यम को चुना। *"क्योंकि जब परमेश्वर के ज्ञान के अनुसार संसार ने ज्ञान से परमेश्वर को न जाना तो परमेश्वर को यह अच्छा लगा, कि इस प्रचार की मूर्खता के द्वारा विश्वास करनेवालों को उद्धार दे"* (1 कुरिन्थियों 1:21)। पौलुस ने कहा कि उसने ठाना है कि मसीही लोगों के बीच यीशु मसीह वरन क्रूस पर चढ़ाए हुए मसीह को छोड़ और किसी बात को न जाने (1 कुरिन्थियों 2:2)। और उसने उसका प्रचार मानवीय ज्ञान की लुभाने वाली बातों से नहीं किया (1 कुरिन्थियों 2:4)। 1 कुरिन्थियों 14 में पौलुस भविष्यवाणी और भाषाओं के दानों के गलत इस्तेमाल को ठीक करने के लिए लिख रहा था। महत्वपूर्ण उद्देश्य यह था कि कलीसिया उन्नति करे (1 कुरिन्थियों 14:4–5), जो केवल तभी हो सकता था जब लोग उसे, जो कहा गया था समझें। आयत 26 में पौलुस के निष्कर्ष पर ध्यान दें, *"सब कुछ आत्मिक उन्नति के लिए होना चाहिए।"* आत्मिक उन्नति केवल परमेश्वर के वचन को समझने से हो सकती है, सो आराधना सभा में प्रचार करने या परमेश्वर के वचन को सुनने पर दिए जाने वाले महत्व को देखा जा सकता है।

प्रचार करना या सिखाना आराधना का महत्वपूर्ण भाग है। प्रचार करना मनोरंजन का रूप नहीं है या किसी के अपने बोलने की कला में माहिर होने को दिखाना नहीं है। प्रचार करना आराधना करने वाले को परमेश्वर को देखने और सुनने के योग्य बना देता है। सीखाने वाले का काम अपने सुनने वालों के लिए परमेश्वर से संदेश लेना होता है। प्रचार करने से व्यक्ति अपने जीवन में व्यक्तिगत रूप में वचन को लागू कर सकता है। प्रचार करना व्यक्ति को परमेश्वर को देखने, अपने आपको देखने और परमेश्वर के वचन के प्रकाश में अपने उद्देश्य को देखने के योग्य बना देता है। हमें यह याद रखना आवश्यक है कि प्रचार करना केवल प्रचार करने के विशेष प्रशिक्षण पाए हुए किसी व्यक्ति तक सीमित नहीं है। बेशक बाइबल की शिक्षा आवश्यक है और यह बड़ी सहायक है पर प्रचार कोई भी कर सकता है। यदि किसी में संजीदगी से अध्ययन करने की योग्यता और अपने आपको तैयार करने की इच्छा हो तो उसे प्रचार करने देना चाहिए, चाहे उसने खुद पढ़कर ही क्यों न सीखा हो। प्रचार करना "कलर्जी यानी पादरी" ताकि सीमित नहीं है। यह विचार मनुष्य ने खोजा है न कि बाइबल ने बताया है।

प्रार्थना

प्रार्थना स्पष्ट रूप में परमेश्वर को हमारी आराधना का एक महत्वपूर्ण भाग है और बाइबल बार-बार इसके महत्व पर जोर देती है। प्रार्थना से सम्बन्धित सामान्य वचनों पर ध्यान दें: *"फिर उसने इसके विषय में कि नित्य प्रार्थना करना और हियाव न छोड़ना चाहिए, उनसे यह दृष्टान्त कहा"* (लूका 18:1)। *"आशा में आनन्दित रहो; क्लेश में स्थिर रहो; प्रार्थना में नित्य लगे रहो"* (रोमियों 12:12)। *"और हर समय और हर प्रकार से आत्मा में प्रार्थना, और विनती करते रहो, और इसी लिए जागते रहो, कि सब पवित्र लोगों के लिए लगातार विनती किया करो"* (इफिसियों 6:18)।

प्रार्थना क्या है?

हमें सबसे पहले और सबसे बढ़कर यह याद रखना आवश्यक है कि प्रार्थना एक माध्यम है जिसके द्वारा हम परमेश्वर से बात करते हैं। यह परमेश्वर में पूरे भरोसे के साथ, परमेश्वर के सामने होती है। यह निष्कपटता से और दिल से होनी आवश्यक है। प्रार्थना झाड़-फूक करने वालों के जादू दिखाने की तरह केवल सही-सही शब्द उच्चारण नहीं होना चाहिए। यह हमारे व्यवहार की विशेषता भी होनी चाहिए। 1 थिस्सलुनीकियों 5:17 में पौलुस ने लिखा कि हमें निरन्तर प्रार्थना करनी चाहिए। यकीनन पौलुस यह नहीं कह रहा है कि हम अपने मनों में प्रार्थना करते हुए चौबीस घण्टे होंठों को हिलाते रहें। निरन्तर प्रार्थना करने का अर्थ केवल इतना है कि परमेश्वर हमारे मनों से कभी दूर नहीं होता। इसलिए हमारे हृदय हमारे जीवन और हमारे मन ऐसे होने चाहिए कि हमारे जीवनों को पहचान प्रार्थना करने वाले के रूप में हो। हर समय हम अगुआई, सहायता आदि के लिए खामोशी से प्रार्थना करते हुए परमेश्वर से छोटी सी प्रार्थना कर सकते हैं। प्रारम्भिक कलीसिया प्रार्थना में लौलीन रहती थी (प्रेरितों 2:42)।

प्रार्थना भौतिकवाद और स्वार्थ के लिए जादूई फार्मूला या शॉर्टकट नहीं है। बेशक परमेश्वर ने अपने लोगों की प्रार्थना सुनने का वचन दिया है (मत्ती 21:22), परन्तु हमें याद रखना आवश्यक है कि हर बात उसकी इच्छा के अनुसार हो। याकूब 4:1-6 में याकूब ने उन कुछ मसीही लोगों की बात की जो परमेश्वर से मांगते थे परन्तु उन्हें मिलता नहीं था। याकूब ने ध्यान दिलाया कि उनकी प्रार्थनाओं का उत्तर नहीं मिलता था क्योंकि उनकी प्रार्थनाएं स्वार्थ भरी होती थीं, जिनमें ऐसी बातें होती थीं जो केवल अपने भोगविलास पर इस्तेमाल के लिए हों। इसलिए हमें प्रार्थनाओं को ऐसे नहीं देखना चाहिए जैसे वे परमेश्वर के बलैंक चैक हों और जो हम मांगेंगे वह हमें मिल जाएगा। प्रार्थना कोई अल्टीमेटम नहीं है। अल्टीमेटम उसे

कहते हैं जो परमेश्वर के साथ यह कहते हुए सौदेबाजी करने की कोशिश होती है "यदि तू मुझे यह या वह आशीष देगा तो मैं तेरी सेवा करने लगूंगा।" परमेश्वर ने जो कुछ हमारे लिए पहले से किया है उसके आधार पर वह हमारी सेवा का हकदार है और हम किसी प्रकार से हमारी सेवा के खोखले वायदे करके परमेश्वर से और आशीष पाने के लिए उस पर दबाव नहीं डाल सकते। न ही हमें प्रार्थना को केवल आपातकाल के लिए उपयोगी चीज की तरह देखना चाहिए। परेशानियां आने पर बहुत से लोग प्रार्थना में परमेश्वर की ओर लौट आते हैं। परन्तु जब परेशानियां खत्म हो जाती हैं तो वे परमेश्वर को भूल जाते हैं और पहले की तरह अपना जीवन बिताने लगते हैं।

प्रार्थना किसे करनी चाहिए?

अधिकतर लोग फुर्ती से यह उत्तर देंगे कि सबको प्रार्थना करनी चाहिए और चाहे मैं किसी को भी प्रार्थना करने से निराश नहीं करूंगा परन्तु हमें यह ध्यान रखना आवश्यक है कि अंत में प्रार्थना परमेश्वर की संतान के लिए सुरक्षित आशीष है। जो लोग परमेश्वर के आत्मिक परिवार में नहीं हैं उससे यह वायदा नहीं किया गया कि परमेश्वर उनकी विनतियों को सुनेगा। *"जो विलम्ब से क्रोध करनेवाला है वह बड़ा समझवाला है, परन्तु जो अधीर है, वह मूढ़ता की बढ़ती करता है"* (नीतिवचन 14:29)। 1 पतरस 3:12 में पतरस ने भजन संहिता 34 में से ये शब्द दोहराए, *"क्योंकि प्रभु की आंखें धर्मियों पर लगी रहती हैं, और उसके कान उसकी विनती की ओर लगे रहते हैं, परन्तु प्रभु बुराई करने वालों के विमुख रहता है।"* इनमें और वचन भी जोड़े जा सकते हैं परन्तु याद रखें कि ये सभी वचन जो प्रार्थना पर लिखे गए हैं परमेश्वर के लोगों या मसीही लोगों के लिए हैं। इसके अलावा केवल उन्हीं मसीही लोगों को प्रार्थना करने की आशीष है जो धार्मिकता से जीवन बिता रहे हैं। 1 यूहन्ना 3:22 में यूहन्ना ने लिखा है, *"और जो कुछ हम मांगते हैं, वह हमें उससे मिलता है; क्योंकि हम उसकी आज्ञाओं को मानते हैं; और जो उसे भाता है वही करते हैं।"* ध्यान दें कि यूहन्ना लिखता है कि जो लोग परमेश्वर की आज्ञाओं को मानते हैं उन्हें वायदा दिया गया है कि परमेश्वर उनकी प्रार्थनाओं का उत्तर देगा। जिसका अर्थ यह हुआ कि जो आज्ञाकारी जीवन नहीं बिताते हैं उन्हें ऐसी प्रतिज्ञाएं नहीं मिली हैं।

मसीही लोगों को एक दूसरे को प्रार्थना करने की आज्ञा दी गई है। *"इसलिए तुम आपस में एक दूसरे के सामने अपने अपने पापों को मान लो; और एक दूसरे के लिए प्रार्थना करो, जिससे चंगे हो जाओ; धर्मी जन की प्रार्थना के प्रभाव से बहुत कुछ हो सकता है"* (याकूब 5:16)। ये बातें सब मसीही लोगों को लिखी गई हैं और हमें बताया गया है कि धर्मी व्यक्ति की प्रार्थना में बड़ी सामर्थ होती है, न कि केवल किसी प्रचारक या प्रीस्ट की प्रार्थना में। हमें कहीं भी किसी प्रीस्ट के सामने अंगीकार करने की आज्ञा नहीं दी गई है और न ही ऐसा कोई संकेत है कि किसी प्रचारक या प्रीस्ट की प्रार्थनाओं में किसी भी अन्य व्यक्ति की प्रार्थनाओं से अधिक शक्ति या प्रभाव होता है। महत्वपूर्ण बात व्यक्ति का जीवन है न कि यह कि वह किस पद पर है। प्रार्थना आज्ञा मानने का बदल भी नहीं है। ऐसे कई समय आए हैं जिनमें परमेश्वर ने किसी से वास्तव में यह कहा हो कि प्रार्थना करना बंद करे (उदाहरण निर्गमन

14:15; प्रेरितों 22:16)।

1 तीमुथियुस 2:8 में पौलुस लिखता है, *"सो मैं चाहता हूं, कि हर जगह पुरुष बिना क्रोध और विवाद के पवित्र हाथों को उठाकर प्रार्थना किया करें।"* पुरुषों के लिए यहां इस्तेमाल हुआ शब्द केवल नर के लिए है। सामान्य रूप में स्त्रियों या मनुष्यजाति के लिए अन्य शब्दों का इस्तेमाल हुआ है। इसलिए पौलुस मण्डली में या सार्वजनिक प्रार्थना में अगुआई केवल पुरुषों द्वारा किए जाने तक सीमित करता है। लोग अक्सर प्रार्थना में हाथ उठाने के बारे में सवाल करते हैं। हाथ उठाकर प्रार्थना करने में बेशक कोई बुराई नहीं है पर इसकी आज्ञा नहीं दी गई है। वचन में लोगों के अलग-अलग अवस्था में प्रार्थना करने की बात की गई है परन्तु अधिकतर उनके घुटनों के बल होने या पूरी तरह से झुकने की बात मिलती है। हमारी प्रार्थना में शारीरिक मुद्रा का कोई महत्व नहीं है। इसके बजाय पौलुस हमारे जीवनों के पवित्र होने पर ज़ोर दे रहा है। प्रार्थना करने वाले पुरुषों का जीवन पवित्र होना यानी आज्ञाकारी जीवन होना आवश्यक है।

हमें किसके लिए प्रार्थना करनी चाहिए?

हमारी प्रार्थनाओं में बहुत सी बातें होनी चाहिए। सबसे बढ़कर हमें परमेश्वर की महिमा करनी चाहिए। महिमा के योग्य परमेश्वर और केवल परमेश्वर है। इससे जुड़ी बात उसकी आशिषों के लिए चाहे वे शारीरिक हों या आत्मिक, हमारा धन्यवाद देना आवश्यक है। *"किसी भी बात की चिन्ता मत करो: परन्तु हर बात में तुम्हारे निवेदन, प्रार्थना और विनती के द्वारा धन्यवाद के साथ परमेश्वर के सम्मुख उपस्थित किए जाएं। तब परमेश्वर की शान्ति, जो समझ के बिलकुल परे है, तुम्हारे हृदय और तुम्हारे विचारों को मसीह यीशु में सुरक्षित रखेगी"* (फिलिप्पियों 4:6-7)।

"प्रार्थना में लगे रहो, और धन्यवाद के साथ उसमें जागृत रहो" (कुलुस्सियों 4:2)। ध्यान दें कि पौलुस ने हमारी प्रार्थनाओं में निजी विनतियां भी शामिल कीं। आवश्यक नहीं कि व्यक्तिगत आशिषों के लिए परमेश्वर से मानना स्वार्थ या पापपूर्ण हो। हमें परमेश्वर से अगुआई और समझ भी मांगनी चाहिए (याकूब 1:5)। हमें दूसरों के लिए जैसे निर्धनों, बीमारों, राजाओं, अन्य मसीही लोगों आदि के लिए भी प्रार्थना करनी चाहिए (याकूब 5:16)। हमारी प्रार्थनाओं का खास तौर पर एक आवश्यक भाग अंगीकार यानी अपने विश्वास का और अपने पापों का अंगीकार दोनों है। इसलिए 1 यूहन्ना 1:8 कहता है कि यदि हम अपने पापों को मान लें तो परमेश्वर हमारे पापों को क्षमा करने में विश्वासयोग्य है। स्पष्टतया अंगीकार के साथ मन फ़िरान और क्षमा के लिए विनती करना भी जुड़ा हुआ है। परमेश्वर वफ़ादार और भरोसे के योग्य है। परमेश्वर ने हमें क्षमा करने की प्रतिज्ञा की है और हम भरोसा कर सकते हैं कि परमेश्वर ने जो वचन दिया है उसे पूरा करेगा। फिर भी हमें यह याद रखना आवश्यक है कि अगर हम दूसरों को क्षमा नहीं करते हैं तो परमेश्वर भी हमें क्षमा नहीं करेगा (मरकुस 11:26)।

हमें प्रार्थना कैसे करनी चाहिए?

हमारी प्रार्थना का सबसे महत्वपूर्ण भाग हमारा व्यवहार है। हमारी प्रार्थना परमेश्वर में मजबूत विश्वास और सच्चे मन से होनी आवश्यक है। *"ये लोग होठों से तो मेरा आदर करते हैं, पर उनका मन मुझ से दूर रहता है"* (मत्ती 15:8)। सच्चे मन में दीनता और सही इरादे से प्रार्थना करना शामिल है। लम्बी लम्बी प्रार्थनाएं करना आवश्यक नहीं है। मत्ती 6:5-8 में यीशु ने अन्यजातियों को उनकी बकबक के लिए उनकी भर्त्सना की थी। बार-बार एक ही बात कहते रहना हमारी प्रार्थना को अधिक प्रभावशाली नहीं बना देता है। बड़े बड़े विश्वासी लोगों की रिकॉर्ड की गई प्रार्थनाएं बड़े कम शब्दों में मिलती हैं। हमें परमेश्वर से आदर सहित प्रार्थना करनी चाहिए। हमें याद रखना आवश्यक है कि परमेश्वर तो परमेश्वर है और हम केवल मनुष्य हैं। *"बातें करने में उतावली न करना, और न अपने मन से कोई बात उतावली से परमेश्वर के सामने निकालना, क्योंकि परमेश्वर स्वर्ग में हैं और तू पृथ्वी पर है; इसलिये तेरे वचन थोड़े ही हों"* (सभोपदेशक 5:2)।

परमेश्वर से प्रार्थना हमारे मध्यस्थ, यीशु के नाम में करनी चाहिए। पौलुस ने लिखा है, *"क्योंकि परमेश्वर एक ही है: और परमेश्वर और मनुष्यों के बीच में भी एक ही बिचवई है, अर्थात मसीह यीशु जो मनुष्य है"* (1 तीमुथियुस 2:5)। मध्यस्थ उसे कहते हैं जो दो पक्षों को मिलवाता है जो कि यहां पर परमेश्वर और मनुष्य हैं। अच्छा मध्यस्थ दोनों पक्षों की परिस्थितियों को जानता है इसलिए यीशु से बेहतर मध्यस्थ नहीं हो सकता है। वह परमेश्वर को जानता है क्योंकि वह परमेश्वर है; वह मनुष्य को जानता है क्योंकि वह मनुष्य के रूप में देहधारी हुआ था (फिलिप्पियों 2:5-11)। पौलुस ने हमें यह भी आश्वस्त किया है कि परमेश्वर को की गई हमारी प्रार्थनाओं में पवित्र आत्मा का भी योगदान है। *"इसी रीति से आत्मा भी हमारी दुर्बलता में सहायता करता है: क्योंकि हम नहीं जानते कि प्रार्थना किस रीति से करना चाहिए, परन्तु आत्मा आप ही ऐसी आहें भर भरकर, जो बयान से बाहर हैं, हमारे लिये विनती करता है; और मनों का जांचनेवाला जानता है कि आत्मा की मनसा क्या है? क्योंकि वह पवित्र लोगों के लिये परमेश्वर की इच्छा के अनुसार विनती करता है"* (रोमियों 8:26-27)। ये आहें किसी प्रकार की आत्मिक भाषा नहीं है जिसका केवल परमेश्वर को ही पता हो बल्कि वे मनुष्य की नहीं, बल्कि पवित्र आत्मा की आहें हैं। पवित्र आत्मा क्या करता है बेशक हम उसकी सब बातों को नहीं समझ सकते पर हम इतना सुनिश्चित हो सकते हैं कि आत्मा और मसीह हमारी विनतियों को लेकर परमेश्वर के सामने उसकी इच्छा के अनुसार प्रस्तुत करते हैं। हमारे लिए यह बड़ा प्रोत्साहन देने वाला होना चाहिए।

प्रार्थना यह संकेत भी है कि अपनी प्रार्थनाओं के उत्तर के लिए हम जो कर पाएंगे, वह करेंगे। प्रार्थना बिना कुछ किए दूसरों की सहायता करने का आसान तरीका नहीं है। याकूब 2:15-16 में याकूब ने इस व्यवहार के विरुद्ध चेतावनी दी, *"यदि कोई भाई या बहिन नंगे उघाड़े हों, और उन्हें प्रति दिन भोजन की घटी हो। और तुममें से कोई उनसे कहे, कुशल से जाओ, तुम गरम रहो और तृप्त रहो; पर जो वस्तुएं देह के लिए आवश्यक हैं वह उन्हें न दे, तो क्या लाभ?"* अन्य शब्दों में किसी के लिए केवल प्रार्थना कर देना उसके किसी काम

का नहीं है बल्कि ज़रूरतमंद लोगों की मदद करनी आवश्यक है। परमेश्वर अपने सेवकों के द्वारा प्रार्थनाओं का उत्तर देता है इसलिए हम किसी के लिए बिना कुछ किए और केवल यह सोचकर कि हम ने अपना फर्ज़ निभा दिया है, केवल प्रार्थना नहीं कर सकते।

प्रभु-भोज

किसी भी मसीही व्यक्ति के लिए, प्रभु-भोज, जिसे सहभागिता भी कहा जा सकता है, हमारी आराधना का महत्वपूर्ण भाग होना चाहिए। प्रभु भोज के सम्बन्ध में हमें निर्देश देने वाले मुख्य वचन हैं मत्ती 26:26-29; लूका 22:14-20 और 1 कुरिन्थियों 11:23-34. प्रभु-भोज से जुड़े कई विचार पाए जाते हैं। (1) यह शुक्रगुजारी है। जब यीशु ने प्रभु-भोज की स्थापना की, तो उसने धन्यवाद किया। हमें हमारे लिए मसीह के बड़े बलिदान के लिए धन्यवादी होना चाहिए। (2) यह एक यादगार है। यादगार हमारे ध्यान में कालांतर में किए गए किसी काम को लाने का काम करती है और सहभागिता हमारा ध्यान यीशु के क्रूस की ओर ले जाती है। 1 कुरिन्थियों 11:25 में हमें यीशु स्मरण में इसमें भाग लेने को कहा गया है। (3) हम प्रभु की मृत्यु का प्रचार करते है, *"क्योंकि जब कभी तुम यह रोटी खाते, और इस कटोरे में से पीते हो, तो प्रभु की मृत्यु को जब तक वह न आए, प्रचार करते हो"* (1 कुरिन्थियों 11:26)। इस प्रकार कुछ हद तक प्रभु-भोज प्रचार करने का एक तरीका है। जब दूसरे लोग हमें प्रभु-भोज में भाग लेते हुए देखते हैं तो हम यीशु के बड़े बलिदान में अपने विश्वास के अपने कामों से प्रचार कर रहे होते हैं, जिसने हमारे लिए अपना लहू बहा दिया। (4) हमारी एक दूसरे के साथ सहभागिता होती है। 1 कुरिन्थियों 10:16-17 पर ध्यान दें, *"वह धन्यवाद का कटोरा, जिस पर हम धन्यवाद करते हैं, क्या मसीह के लोहू की सहभागिता नहीं? वह रोटी जिसे हम तोड़ते हैं, क्या वह मसीह की देह की सहभागिता नहीं। इसलिए, कि एक ही रोटी है सो हम भी जो बहुत हैं, एक देह हैं: क्योंकि हम सब उसी एक रोटी में भागी होते हैं।"* सहभागिता शब्द का अर्थ है संगति। इस संदर्भ में पौलुस ने कहा कि मूर्तियों के मन्दिरों में खाना दुष्टात्माओं के साथ संगति था। इसी प्रकार से प्रभु-भोज खाने में हमारी संगति यीशु के साथ और एक दूसरे के साथ होती है। हम मसीह के प्रति परस्पर वफादारी के द्वारा अपनी एकता को समझते और इस पर जोर देते हैं।

प्रभु-भोज में पाई जाने वाली चीज़ें और अर्थ

प्रभु-भोज में इस्तेमाल की जाने वाली चीज़ें बेहद सादा हैं। मनुष्य पत्थर, सोने आदि जैसी लम्बे समय तक चलने वाली सामग्रियों से यादगार बनाना चाहता है। प्रभु परमेश्वर ने अपनी यादगार रोटी और अंगूर के रस जैसी नाशवान सामग्री से बनाई। इस सामग्री का अर्थ हमारे मनों से मिलता है। यीशु ने अखमीरी रोटी का इस्तेमाल किया (लूका 22:1, 8-9)। यहूदियों को फसह के अपने पर्व में अखमीरी रोटी का इस्तेमाल करने की आज्ञा दी गई थी। सो यीशु ने उसी वस्तु को लेकर जो पहले से प्रचलन में थी, उसे एक नया अर्थ दे दिया। अब

यह यीशु के शारीरिक देह को दर्शाता है, जो क्रूस पर हमारे लिए बलिदान की गई। यीशु ने दाख का रस भी लिया (मत्ती 26:29), जो कि अंगूर का रस ही होगा, और कहा कि अब यह उसके लहू को दर्शाता है जो कि शीघ्र ही क्रूस पर बहाया जाने वाला था।

रोटी के सम्बन्ध में मत्ती 26 में यीशु ने कहा, *"यह मेरी देह है"* (मत्ती 26:26)। दाख के रस के सम्बन्ध में उसने कहा, *"यह वाचा का मेरा वह लहू है, जो बहुतों के लिये पापों की क्षमा के निमित्त बहाया जाता है"* (मत्ती 26:28)। इन शब्दों के आधार पर कुछ लोगों ने यह गलत निष्कर्ष निकाल लिया है कि रोटी और दाखरस आशीष देने के समय ये सचमुच में यीशु की देह और लहू बन जाते हैं। दिखने में वही, स्वाद नहीं, भौतिक गुण वही, पर वे पहले वाले नहीं हैं। इस वचन का अर्थ यह नहीं है। यीशु के कहने का अर्थ तो केवल इतना था कि वे उसकी देह और उसके लहू के प्रतीक हैं। यूहन्ना 10:9 में यीशु ने कहा, *"द्वार मैं ही हूं।"* यीशु यह नहीं कह रहा था कि वह लकड़ी का दरवाज़ा है बल्कि यह कह रहा था कि आत्मिक रूप में स्वर्ग का द्वार वही है। केवल दो आयतों के बाद उसने कहा कि *"अच्छा चरवाहा"* वही है। यीशु ने कभी भेड़ें नहीं चराई थीं यानी वह कभी चरवाहा नहीं बना था बल्कि आत्मिक रूप में वह हमारे प्राणों का प्रधान चरवाहा है (1 पतरस 5:4)। यीशु द्वार या चरवाहे की तरह है। इसी प्रकार से प्रभु-भोज की सादा सी चीज़ें हमें यीशु की देह और लहू का प्रतीक देती हैं।

1 कुरिन्थियों 11:24-25 में पौलुस ने कुरिन्थियों को यीशु के शब्द याद दिलाए जो प्रभु-भोज की स्थापना की रात उसने अपने चेलों से कहे थे। यीशु ने अपने चेलों से कहा था, *"मेरे स्मरण के लिए यही किया करो।"* प्रभु-भोज की स्थापना यीशु ने की है इसलिए यह महत्वपूर्ण है। यह केवल कलीसिया का नियम नहीं है जिसे मसीही लोगों को मसीह के बलिदान को याद रखने के लिए कलीसिया ने बहुत साल पहले बनाया हो। हम इस में मसीह के बलिदान के स्मरण में भाग लेते हैं। परन्तु हमें इसे शोक मनाने के समय के रूप में नहीं देखना चाहिए। बेशक यह गम्भीर बात है। तौभी 1 कुरिन्थियों 10:16 में इसे *"धन्यवाद का कटोरा"* या आशीष का कटोरा कहा गया है। हमारे लिए यीशु की मृत्यु एक बहुत बड़ी त्रासदी नहीं है बल्कि यह सबसे बड़ा दान है यानी सबसे बड़ी आशीष है जो हमें मिली है।

हम प्रभु-भोज में भाग कब लेते हैं?

कलीसियाओं के प्रभु-भोज में भाग लेने के अलग-अलग समय हैं। कई इसे महीने में एक बार, कई तीन महीने में एक बार या केवल विशेष अवसरों के समय लेते होंगे। कई कलीसियाएं हर सप्ताह इसमें भाग लेती हैं। अक्सर लोग कहते हैं कि बाइबल में ऐसी कोई आज्ञा नहीं है जो साफ़-साफ़ यह बताती हो कि हमें इसमें कब भाग लेना चाहिए। यह सच है कि साफ़-साफ़ बताने वाली कोई आज्ञा नहीं है कि हमें इस सहभागिता में कब-कब भाग लेना चाहिए। परन्तु यदि कोई समय नहीं ठहराया गया तो फिर यदि कोई जीवन में एक ही बार इसे लेता है तो किसी भी अन्य व्यक्ति की तरह वह वचन के अनुसार ही होगा।

आरम्भिक कलीसिया के उदाहरण से पता चलता है कि उनके इकट्ठे होने का मुख्य कारण सहभागिता करना या "रोटी तोड़ना" था। प्रेरितों 20:7 में हम पढ़ते हैं, *"सप्ताह के*

पहले दिन जब हम रोटी तोड़ने के लिये इकट्ठे हुए, तो पौलुस ने जो दूसरे दिन चले जाने पर था, उनसे बातें कीं; और आधी रात तक बातें करता रहा।'' यहां हम देखते हैं कि कलीसिया रोटी तोड़ने के लिए जो कि प्रभु-भोज मनाने के लिए एक और शब्द है, न कि केवल पौलुस से वचन को सुनने के लिए इकट्ठा हुई। आरम्भिक मसीही लेखों से हमें यह भी पता चलता है कि कलीसिया हर सप्ताह सहभागिता करती है। 1 कुरिन्थियों 11:20 में हमें पता चलता है कि कुरिन्थुस की कलीसिया प्रभु-भोज खाने के उद्देश्य से इकट्ठा होती थी। इकट्ठा होने के समय की आज्ञा सप्ताह का पहला दिन था (1 कुरिन्थियों 16:2)। हम हर पहले दिन इकट्ठा होते हैं इसलिए हमें हर पहले दिन प्रभु-भोज में भाग लेना चाहिए।

कुछ लोग यह बहस करेंगे कि इतनी जल्दी जल्दी भाग लेने से इसका महत्व कम हो जाएगा और यह केवल एक रस्म बनकर रह जाएगी जिसे पूरा करना है। ऐसा हो सकता है, परन्तु यह तो आराधना के हर पहलू के लिए कहा जा सकता है। परन्तु कोई यह बहस नहीं करता कि हमें आराधना कभी-कभी करनी चाहिए। 1 कुरिन्थियों 11:28-29 में पौलुस ने इस समस्या पर बात की, *''इसलिए मनुष्य अपने आप को जांच ले और इसी रीति से इस रोटी में से खाए, और इस कटोरे में से पीए। क्योंकि जो खाते-पीते समय प्रभु की देह को न पहिचाने वह इस खाने और पीने से अपने ऊपर दण्ड लाता है।''* इन वचनों को अक्सर गलत समझा जाता है और हर सप्ताह यह निर्णय लेते हैं कि वे योग्य हैं कि नहीं, इस आधार पर कि उन्हें क्या लगता है कि वे पिछले हफ्ते कितना पवित्र जीवन जीए या नहीं। अनुचित रीति से शब्द एक क्रिया विशेषण शब्द है जो भोज लिए जाने के तरीके को बदल देता है। हमें अपनी जांच करनी है यानी यह सुनिश्चित करना है कि हम मसीह की देह और लहू को याद रखें जो कि हमारे लिए दिए गए थे। यह बहुत ही गम्भीर मामला है क्योंकि पौलुस ने कहा कि यदि हम बिना सोचे इसमें भाग लेते हैं तो हम अपने ऊपर दण्ड लाते हैं। हमने आशीष को खोया ही नहीं है बल्कि हमने पाप किया है।

किसे भाग लेना चाहिए?

कई बार यह सवाल पूछा जाता है कि ''क्या गैर मसीही लोग प्रभु-भोज में भाग ले सकते हैं?'' हमें याद रखना चाहिए कि यह परमेश्वर के साथ और यीशु के साथ सहभागिता है। यीशु राज्य में इसे हमारे साथ खा रहा होता है। राज्य कलीसिया यानी मसीह की आत्मिक देह है; इस प्रकार यह एक आशीष है जो मसीह के राज्य के लोगों के लिए ही सुरक्षित है। कुछ भाई यह तय करना चाहते हैं कि कौन इसमें भाग ले सकता है और वह उन्हें जो उन्हें लगता है कि मसीह से बाहर हैं, इसमें भाग लेने से मना कर देते हैं। यह हमें न्यायियों की भूमिका में ला देता है जबकि हमें न्याय करने की अनुमति नहीं मिली। हम किसी के मन को नहीं जानते हैं। यह प्रभु का भोज है न कि मेरा या कलीसिया का भोज। यह एक सहभागिता है। यदि किसी की मसीह के साथ संगति नहीं है, तो वह खोया हुआ और मसीह के साथ उसकी कोई सहभागिता नहीं है। व्यक्ति को केवल थोड़ी रोटी खाना और थोड़ा रस पीना है।

उसका प्राण किसी प्रकार बेहतर या बुरा नहीं है क्योंकि वह तो पहले से खोया हुआ है। हमें अपने ऊपर और परमेश्वर के साथ अपने सम्बन्धों पर ध्यान देना आवश्यक है। और भाग लेने के समय हमारे मन परमेश्वर के साथ हमारे सम्बन्ध पर लगे होने चाहिए न कि दूसरों पर उंगली करने की ओर।

गाना

एक मसीही के लिए आराधना के सभी कार्य आनन्द देने के लिए होने चाहिए, परन्तु उनमें से अगर एक कार्य से अधिकतर लोगों को अधिक आनन्द मिलता है तो वह गाना ही होगा। बहुत बार लोग अपने आप में गुनगुनाते या कोई मनपसंद गीत गा रहे होते हैं, वे ऊंचे स्वर में भी गा रहे हो सकते हैं या फिर मन ही मन खामोशी से। गाना मसीही आराधना का एक महत्वपूर्ण भाग है, फिर भी यह सबसे विवादपूर्ण भाग भी है। अपने दिमाग को खोलें और परमेश्वर को बाइबल के द्वारा आपसे बात करने दें।

गाने के सम्बन्ध में नये नियम के दो आदर्श हवाले इफिसियों 5:19 और कुलुस्सियों 3:16-17 हैं। वे एक दूसरे से बिल्कुल मिलती जुलती हैं। *"और आपस में भजन और स्तुतिगान और आत्मिक गीत गाया करो, और अपने अपने मन में प्रभु के सामने गाते और कीर्तन करते रहो"* (इफिसियों 5:19)। *"मसीह के वचन को अपने हृदय में अधिकाई से बसने दो; और सिद्ध ज्ञान सहित एक दूसरे को सिखाओ, और चिताओ, और अपने अपने मन में अनुग्रह के साथ परमेश्वर के लिए भजन और स्तुतिगान और आत्मिक गीत गाओ। और वचन से या काम से जो कुछ भी करो सब प्रभु यीशु के नाम से करो, और उसके द्वारा परमेश्वर पिता का धन्यवाद करो"* (कुलुस्सियों 3:16-17)।

गाने के उद्देश्य

गाना सिखाने का एक तरीका है। गाए जाने वाले गाने के बोलों के द्वारा हम एक दूसरे को समझा रहे होते हैं। समझाने का काम केवल शब्द ही करते हैं इसलिए हमें यह सुनिश्चित करना आवश्यक है कि शब्द साफ़-साफ़ समझ आ सकें। और उन से पवित्र शास्त्र का सबक ही सिखाया जाए। गलत शिक्षा को गाना भी उतना ही गलत है जितना गलत शिक्षा देना है। यदि हम किसी नियम को संगीत की लय में ढाल सकें तो उसे याद रखना आम तौर पर आसान हो जाता है। बच्चों को सिखाने के बेहतरीन ढंगों में से एक उन्हें गानों के द्वारा सिखाना होता है। इससे उन्हें आसानी से सिखाया जा सकता है और उनके लिए यह मनोरंजक होता है। इस प्रकार गाना, सिखाने का बहुत अच्छा ढंग है। इस विचार से लय का इतना महत्व नहीं रहता है क्योंकि सिखाने और सुधारने का काम केवल शब्दों से हो सकता है। हमें आत्मिक गीत गाने आवश्यक हैं, न कि वे गीत जो हमें पसंद हों या जो सुनने में अच्छे लगते हों। लोग आम तौर पर भजनों, स्तुतिगानों और आत्मिक गीतों में अन्तर के बारे में पूछते हैं। सटीक अन्तर बता पाना कठिन है। इन शब्दों का इस्तेमाल आम तौर पर एक दूसरे के स्थान पर किया जाता है इसलिए लगता है कि गानों की अलग-अलग किस्मों में अंतर करने का कोई प्रयास

नहीं किया जाना चाहिए।

हम एक दूसरे को सिखाते भी हैं, जो हमारी आराधना के दो तरफा पहलू पर जोर देता है। इसके परिणामस्वरूप हम एक दूसरे का सुधार कर रहे होते हैं। उन गीतों से जो पवित्र शास्त्र के किसी नियम पर जोर देते हैं बढ़कर अधिक प्रोत्साहित कर सकती हैं। हम एक दूसरे को सिखाते हैं, इसलिए यह पूरी मण्डली के गाने में शामिल होने पर जोर देता है, बजाय इसके कि केवल कुछ लोग गाएं, जैसे भजन मण्डली या क्वायर या अन्य छोटे-छोटे समूह, जिसमें केवल कुछ लोग गाते हैं जबकि दूसरे उन्हें सुनते हैं। केवल गाना ही एक ऐसा कार्य है जिसमें पूरी मण्डली मिलकर एक सुर में भाग ले सकती है।

गाना एक आत्मिक बलिदान है। *"इसलिए हम उसके द्वारा स्तुतिरूपी बलिदान अर्थात उन होठों का फल जो उसके नाम का अंगीकार करते हैं, परमेश्वर के लिए सर्वदा चढ़ाया करें"* (इब्रानियों 13:15)। यह आयत बलिदानों के पुराने सिस्टम की बात करते हुए यह घोषणा करती है कि गाना पुराने नियम में दिए जाने वाले शारीरिक बलिदानों का हमारा आत्मिक प्रतिरूप है। अपने गानों में हम उन बड़ी बड़ी आशिषों के लिए धन्यवाद देने के साथ-साथ परमेश्वर के अद्भुत कामों के लिए उसकी महिमा करते हैं। इस प्रकार हमें इससे यह याद रखना आवश्यक है कि गाने के द्वारा हम परमेश्वर के साथ बातचीत कर रहे हैं। गाने में हमारा सब कुछ यानी हमारी आत्मा, हमारा मन, हमारा दिल और हमारे होंठ लगे होते हैं। इफिसियों 5:19 हमें अपने अपने मनों में लय बनाने की आज्ञा देता है। जब हम गाते हैं तो हमारे मन और हमारे दिल गीत के संदेश के साथ सुर मिलाते हुए होने आवश्यक हैं; नहीं तो मेरा गाना केवल दिखावटी रस्म रह जाएगी। इसके सिवाय कुछ नहीं। परमेश्वर खोखली रस्मों से कभी खुश नहीं होता।

गाना कलीसिया की एकता पर जोर देता है। रोमियों 15:6 में पौलुस रोम के मसीही लोगों से *"एक मन और एक स्वर में"* परमेश्वर की महिमा करने का आग्रह करता है। नये नियम की कई आयतें कलीसिया की एकता पर जोर देती हैं। परन्तु गाना मधुर सम्बन्ध बनाने का एक तरीका है जो हमारा एक दूसरे के साथ होना चाहिए। इससे भी बढ़कर यदि हमारे आत्मिक परिवार में एकता नहीं है तो परमेश्वर की आराधना भी प्रभावित होती है। मसीही लोगों के मिलकर इकट्ठे गाने से बढ़कर जैसे वे एक ही स्वर में गा रहे हैं, कोई और बात नहीं है जो प्रेरणा देने वाली है।

परमेश्वर किस प्रकार अनुमति देता है!

बहुत से लोग इस बात को गलत समझते हैं कि हमें उसके लिए जो हम करते हैं, के लिए अधिकार कैसे मिलता है, विशेषकर आराधना में। दो प्रकार की आज्ञाएं होती हैं, एक सामान्य आज्ञाएं हैं और दूसरी विशिष्ट आज्ञाएं होती हैं। सामान्य आज्ञा बिना यह स्पष्ट किए बिना होती कि कोई काम कैसे किया जाए किसी काम को करने की अनुमति देने वाली सामान्य बात होती है। दूसरी ओर विशिष्ट आज्ञा में स्पष्ट किया जाता है कि कोई काम कैसे किया जाना आवश्यक है। कुछ उदाहरणों पर ध्यान दें। परमेश्वर हमें जाकर सुसमाचार सुनाने की आज्ञा देता है, जो कि सामान्य आज्ञा है, क्योंकि जाने या सिखाने का कोई विशिष्ट ढंग नहीं बताया

गया है। नूह से गोपेर की लकड़ी का जहाज बनाने को कहा गया था। किस प्रकार की लकड़ी का प्रयोग करना है यह स्पष्ट आज्ञा दी गई। इस प्रकार उसे किसी भी अन्य प्रकार की लकड़ी का इस्तेमाल करने की मनाही थी। संगीत सामान्य शब्द है जिसमें वाद्य संगीत हो या कण्ठ संगीत, हर प्रकार का संगीत आ जाता है। यदि परमेश्वर ने हम से केवल संगीत का इस्तेमाल करने को कहा होता तो मसीही लोगों के पास किसी भी प्रकार का संगीत इस्तेमाल करने का विकल्प होना था। परन्तु परमेश्वर ने संगीत की किस्म गाने को स्पष्ट किया। जो कि खुद-ब-खुद संगीत की अन्य किस्म को खारिज कर देता है। इस प्रकार के साज़ बाहर हो जाते हैं। बेशक परमेश्वर ने हमें साज़ों का इस्तेमाल न करने के लिए साफ़-साफ़ कहीं नहीं बताया है।

इतिहास में साज़

बहुत से धार्मिक समूह अपने गाने के साथ साज़ों का इस्तेमाल करते हैं। यह इतना आम हो गया है कि इस पर कोई सवाल भी नहीं करता कि यह सही है या नहीं। परन्तु शुरू से ऐसा नहीं था। केवल पिछली कुछ सदियों में ही साज़ों का इस्तेमाल इतना बढ़ गया है और इस पर कोई सवाल ही नहीं करता। नये नियम में हमें आराधना में केवल गाने को कहा गया है क्योंकि आराधना में गाने के साज़ों का कोई उल्लेख नहीं है। संगीत दो प्रकार का होता है, एक कण्ठ संगीत है और दूसरा वाद्य संगीत। आराधना में ज़ोर आत्मिक होने पर दिया जाना आवश्यक है, जबकि गाने के साज़ों का जोर हमारे ऊपर यानी सांसारिक है। पौलुस ने बजाने की आज्ञा तो दी है पर इस पर जिस साज़ को बजाने की बात वह कह रहा है वह दिल का है। यानी दिल के साज़ और स्वर का सुर, सुर और ताल यानी लय मिलकर संगीत बनते हैं।

कुलुस्सियों 3:17 मनुष्य को हर काम यीशु के नाम में यानी यीशु के अधिकार से करने की आज्ञा देता है। हम यीशु के अधिकार से कैसे गा सकते हैं जब उस साज़ को जोड़ देते हैं जिसका हमें कोई अधिकार नहीं है? वचन साज़ों पर बिल्कुल खामोश है इसलिए बहुत से लोग दावा करते हैं कि उन्हें गलत नहीं कहा गया इसलिए उनका इस्तेमाल बिल्कुल स्वीकार्य है। परन्तु खामोशी का मतलब अधिकार देना नहीं है। इब्रानियों की पुस्तक में हम इसके दो उदाहरण देखते हैं। इब्रानियों 1:4-5 में लेखक स्वर्गदूतों पर मसीह के श्रेष्ठ होने को साबित करना चाहता है। ऐसा करने के लिए वह पूछता है कि किस स्वर्गदूत से परमेश्वर ने कहा, *"तू मेरा पुत्र है।"* बेशक इसका अर्थ है कि किसी स्वर्गदूत से नहीं। इसलिए मसीह स्वर्गदूतों से बढ़कर है, इब्रानियों 7:13-14 में लेखक एक नई याजकाई की आवश्यकता को पक्का करना चाह रहा है। यीशु के लिए याजक होने के लिए एक नई व्यवस्था का आरम्भ होना आवश्यक था। क्योंकि पुरानी व्यवस्था यहूदा के गोत्र में से किसी याजक के आने के बारे में कुछ नहीं बताती। इसके बजाय व्यवस्था में यह स्पष्ट किया गया था कि हर याजक लेवी के गोत्र में से ही हो। लेवी के बारे में साफ बताया गया है। इसलिए अन्य सभी गोत्रों की बात खुद-ब-खुद खारिज हो जाती है। इस प्रकार मूसा की व्यवस्था के अनुसार मसीह याजक नहीं बन सकता था क्योंकि वह लेवी के गोत्र में से नहीं था। इसी प्रकार केवल गाने की ही स्पष्ट अनुमति दी गई है इसलिए संगीत की अन्य हर किसम खारिज हो जाती है। अन्य शब्दों में साज़ों के इस्तेमाल की हमें कोई अनुमति नहीं है।

मसीहियत के पूरे इतिहास में साज़ों का बार-बार विरोध किया गया है। कलीसिया के बड़े बुज़ुर्ग बार-बार अपनी आराधना में साज़ों के मिलाए जाने का विरोध करते रहे हैं। आराधना में पहली बार ऑरगन यानी साज़ सातवीं सदी के अंत में लाया गया माना जाता है। यहूदी लोग मन्दिर में की जाने वाली अपनी आराधना में साज़ों का इस्तेमाल करते थे और यूनानी लोग मूर्तियों की पूजा करने में उनका इस्तेमाल करते थे। इसलिए बहुत सम्भावना है कि आरम्भिक मसीही साज़ों से परिचित होंगे और इनके इस्तेमाल में उन्हें कोई दिक्कत नहीं होती होगी परन्तु फिर भी व्यावहारिक रूप में हर कोई यह मानता है कि आरिम्भक कलीसिया अपनी धार्मिक आराधना में साज़ों का इस्तेमाल नहीं करती थी।

इसके अलावा आधुनिक डिनोमिनेशनों के अधिकतर संस्थापकों ने भी साज़ों के इस्तेमाल का विरोध किया है। इन कुछ उद्धरणों को देखें:

मार्टिन लूथर: "परमेश्वर की आराधना में ऑरगन का प्रतीक है।"

जॉन कैल्विन: "यह धूप जलाने, मोमबत्तियां जलाने या व्यवस्था की अन्य परछाइयों को बहाल करने से बढ़कर उपयुक्त नहीं है। रोमन कैथोलिक लोगों ने इसे यहूदियों से लिया है।"

जॉन वैस्ली: "मुझे हमारे चैपलों में ऑरगन के इस्तेमाल से कोई आपत्ति नहीं है। शर्त यह है कि यह न तो दिखाई दे और न सुनाई दे।"

जॉन नॉक्स: ऑरगन को "सीटियों का डिब्बा" कहते थे।

हमारा उद्देश्य तो नए नियम की कलीसिया को बहाल करने का है जो आराधना में गाने में साज़ों का इस्तेमाल नहीं करती और इसका विरोध करती है। इसलिए यदि कोई केवल नये नियम का मसीही बनना चाह रहा है तो वह बिना साज़ों के ही आराधना करेगा।

पवित्र लोगों का चंदा

मसीही व्यक्ति के लिए चंदा देना फर्ज के साथ-साथ एक बड़ी आशीष भी है। बेशक देने का सबसे बड़ा उदाहरण हमारे के लिए क्रूस पर यीशु का मरना है। मरकुस 12:41-44 में हमें मनुष्य के देने का शायद सबसे बड़ा उदाहरण मिलता है। यीशु लोगों को मन्दिर के खजाने में पैसे डालते हुए देख रहा था। एक विधवा आई और उसने दो दमड़ियां डाल दीं, जो कि उस समय का सबसे छोटा सिक्का था। बेशक आज की करंसी में उसकी सही सही राशि अलग होगी पर मैं यह कहना चाहता हूं कि यह सिक्का लगभग न के बराबर होगा। फिर भी यीशु ने कहा कि इस विधवा ने उन सबसे से बढ़कर दिया था क्योंकि उन्होंने अपनी बहुतायत में से दिया था पर इसने जो कुछ इसके पास था वह सब दे दिया था।

चंदा देने के कारण

परमेश्वर की दृष्टि में कारण का महत्व सबसे बढ़कर होता है। पहले यह देखते हैं कि चंदा देने के कुछ गलत कारण क्या हैं। देना केवल फर्ज समझकर या प्रतिष्ठा पाने या लोगों से प्रशंसा पाने या इस सोच से राहत पाने के लिए नहीं होना चाहिए कि जो काम मैं खुद नहीं कर सकता वह पैसा दे कर करवा लूं। कुछ पैसे दे देना काम करने की आवश्यकता को कम नहीं कर देगा। अपनी जगह परमेश्वर की सेवा करने के लिए किसी दूसरे को भाड़े पर नहीं लिया जा सकता। देना मुख्यतया मसीही व्यक्ति के विश्वास, प्रेम और परमेश्वर के प्रति समर्पण का एक कार्य है। अपने देने से हम परमेश्वर के प्रति अपने प्रेम को दिखाते हैं। जितना हम देते हैं उतना ही हमारी उन्नति भी होती है। उदार बनकर हम ईश्वरीय स्वभाव के साझी बन जाते हैं। देना हमारे लिए परमेश्वर की आशीष का मार्ग भी खोल देता है। आखिर में कलीसिया के लिए, परमेश्वर के राज्य के लिए, उन्नति के लिए देना आवश्यक है। कलीसिया की कई जरूरतों के लिए पैसा जरूरी नहीं होता, और अपने बच्चों के लिए परमेश्वर की योजना यही है कि वे राज्य को सपोट करें।

1 कुरिन्थियों 16:1-2

"अब उस चन्दे के विषय में जो पवित्र लोगों के लिए किया जाता है, जैसी आज्ञा मैं ने गलातिया की कलीसियाओं को दी, वैसा ही तुम भी करो। सप्ताह के पहले दिन तुम में से हर एक अपनी आमदनी के अनुसार कुछ अपने पास रख छोड़ा करे, कि मेरे आने पर चन्दा न करना पड़े।"

इन आयतों में हमें देने या कुछ अलग रख छोड़ने की आज्ञा मिलती है। हमें सप्ताह के

पहले दिन, जब कलीसिया इकट्ठा होती थी, ऐसा करने की आज्ञा दी गई है जो इस बात का संकेत है कि अलग रख छोड़ना कलीसिया को दिया जाने वाला चंदा था न कि उसे घर में ही रख देना। यदि अलग रख छोड़ना घर में होता, तो यह किसी भी समय हो सकता था, जिसमें कलीसिया के साथ इकट्ठा होने की कोई आवश्यकता नहीं थी।

* यह एक निजी आज्ञा थी। केवल धनवानों, बूढ़े लोगों, जिनके ऊपर कम कर्ज हो आदि लोगों को ही नहीं बल्कि हर किसी को इसमें योगदान देना चाहिए।

* हमें अलग से रखना आवश्यक है। आम तौर पर हम इसे धन ही समझते हैं परन्तु इसमें और भी चीजें हो सकती हैं, यह इस पर निर्भर करता है कि किसी के पास क्या रखने को है। किसी के पास पैसे थोड़े होने का अर्थ यह नहीं है कि वह दे नहीं सकता। बाइबल यह कभी नहीं कहती है कि केवल पैसे ही दिए जाने चाहिए या दिए जा सकते हैं।

* हमें अपनी आमदनी के अनुसार देना आवश्यक है। परमेश्वर हम से यह नहीं कहता है कि हम एक निश्चित राशि दें। यहूदियों को अपनी आमदनी का दसवां भाग देने की आज्ञा दी गई थी, परन्तु अलग-अलग प्रकार के बलिदानों तथा अन्य बातों पर ध्यान करें तो वे वास्तव में इससे कहीं बढ़कर देते थे। जबकि हमें एक उत्तम वाचा और उत्तम उद्धारकर्त्ता मिला है, तो क्या हमें उन से कम देना चाहिए? यहां मुख्य बात यह है कि हम अपनी तुलना दूसरों से नहीं कर सकते। देना एक व्यक्तिगत मामला है इसलिए हमें उन लोगों के साथ, जो हो सकता है कि जो हम से बहुत कम दे रहे हों, अपनी तुलना करके, अपने आपको सही ठहराने की कोशिश से बचना चाहिए।

* यह सुरक्षात्मक था। उन्हें चंदा इकट्ठा करना आवश्यक था ताकि पौलुस के आने पर इकट्ठा न करना पड़े। यह पौलुस के थोड़ी देर बाद कुरिन्थुस में आने की बात थी। उन्हें पौलुस के आने पर उसके लिए पहले से चंदा तैयार रखना था। यह इस बात को दिखाता है कि हमारे पास उन आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए जो पड़ सकती हैं पैसा होना आवश्यक है। यह नहीं कि जब आवश्यकता पड़े, हम तभी चंदा इकट्ठा करें।

2 कुरिन्थियों 9:5-7

"इसलिए मैं ने भाइयों से यह विनती करना आवश्यक समझा कि वे पहिले से तुम्हारे पास जाएं, और तुम्हारी उदारता का फल जिस के विषय में पहले से वचन दिया गया था, तैयार कर रखें, कि यह दबाव से नहीं परन्तु उदारता के फल की नाईं तैयार हो। परन्तु बात तो यह है, कि जो थोड़ा बोता है वह थोड़ा काटेगा भी; और जो बहुत बोता है, वह बहुत काटेगा। हर एक जन जैसा मन में ठाने वैसा ही दान करे; न कुढ़ कुढ़ के, और न दबाव से, क्योंकि परमेश्वर हर्ष से देनेवाले से प्रेम रखता है।"

*हमें आनन्द से और स्वेच्छा से देना आवश्यक है। यदि हम यह सोचकर देते हैं कि हमें देना आवश्यक है तो परमेश्वर प्रसन्न नहीं होता। हम प्रेम के कारण देते हैं न कि इसलिए कि देना मजबूरी है। देना कभी भी मुसीबत या बेबसी से नहीं होना चाहिए। कुछ कलीसियाएं अपने सदस्यों से प्रण (*pledge*) लेकर उन से जबर्दस्ती करने का प्रयास करती है और यदि वे *pledge* नहीं देते तो वे उन पर जुर्माना लगाती हैं। ऐसा कर देने के आनन्द को छीनकर

इसे एक मजबूरी बना देता है।

* जैसे हम ने मन में ठाना है वैसे हमें देना आवश्यक है। इसका अर्थ यह है कि हम यह सोच समझकर पहले से निर्णय लेते हैं कि हम क्या देंगे। हम पहले परमेश्वर को देने और फिर बाकी को अपने लिए खर्च करने का फैसला करते हैं न कि यह कि जो रविवार के दिन हमारे पास बचा हो वह परमेश्वर को देंगे।

* यह वचन हमें देने की प्रेरणा भी देता है। देना मजबूरी क्यों नहीं होना चाहिए उसका एक मुख्य कारण यह है कि क्योंकि परमेश्वर ने हमें जितना हम उसे देते हैं उससे कहीं बढ़कर आशीष देने वायदा किया है। हमें मन में लालच रखकर नहीं देना चाहिए यानी यह सोचकर नहीं देना कि हमें इससे और अधिक मिलेगा। तौभी परमेश्वर ने हमें वायदा किया है कि जिस प्रकार हम उसे देते हैं उसी प्रकार वह हमें आशीष देगा। कुछ लोग खास कर टीवी पर प्रचार करने वाले लोगों को और अधिक पाने की लालसा दिलाकर इस वचन का दुरुपयोग करते हैं। वे लोगों को उन्हें "पैसा भेजने" को कह सकते हैं जिससे जल्द ही उनकी मनोकामना पूरी हो जाए। यह वचन के बाहर होने के साथ साथ गलत इरादे की ओर भी ध्यान दिलाता है। 2 कुरिन्थियों 9:8 में याद दिलाता है कि परमेश्वर हमें आशीष देगा ताकि हम उसका काम भले कामों के लिए कर सकें न कि इसलिए हम अपनी सुख सुविधा के लिए इसका इस्तेमाल करें।

* इससे कोई फर्क नहीं पड़ता कि दान कितना बड़ा है। *"क्योंकि यदि मन की तैयारी हो तो दान उसके अनुसार ग्रहण भी होता है जो उसके पास है न कि उसके अनुसार जो उसके पास नहीं"* (2 कुरिन्थियों 8:12)। अन्य शब्दों में परमेश्वर केवल यह नहीं देखता कि किसी का दान कितना बड़ा है। यह इस बात को समझा देता है कि हम अपने दानों की तुलना एक दूसरे से नहीं कर सकते। परमेश्वर किसी की योग्यता के अनुसार ही निर्णय करता है और यह तय करने की योग्यता केवल परमेश्वर में है।

देने के परिणाम

देने का एक स्पष्ट परिणाम तो यह है कि कलीसिया की आवश्यकताएं पूरी होती हैं। बाइबल में हमें पैसा इकट्ठा करने के विभिन्न तरीकों या कलीसिया के विभिन्न कार्यों को चलाने के लिए पैसा इकट्ठा करने का कोई अधिकार नहीं मिलता। न ही कलीसिया को गैर सदस्यों से चंदा मांगना चाहिए, जैसा कि आज के अधिकतर टीवी कार्यक्रमों में होता है। कलीसिया का काम कलीसिया के सदस्यों के प्रयासों से चलना चाहिए।

देने से धन्यवाद होता है और परमेश्वर को महिमा मिलती है। परमेश्वर की अपनी सेवकाई को पूरा करने से दूसरे लोग हमारी सेवकाई को देखकर हमारे परमेश्वर की आज्ञा मानने के कारण परमेश्वर की महिमा करते हैं। मत्ती 5:16 में हम यीशु को इस पर बात करते हुए देखते हैं। *"तुम्हारा उजियाला मनुष्यों के सामने चमके कि वे तुम्हारे भले कामों को देखकर तुम्हारे पिता की जो स्वर्ग में है बढ़ाई करें।"*

देने से कलीसिया और हमारी आत्मिक रूप में उन्नति होती है। जब हम वैसे देते हैं जैसे दे सकते हैं तो कलीसिया के पास अपने काम को करने के लिए फंड होने लगते हैं। जिससे

बहुत सी जगहों पर खोई हुई आत्माओं के मनपरिवर्तन का मार्ग खुलता है। जिस कलीसिया में कोई काम नहीं हो रहा उसका भाग कोई नहीं बनना चाहेगा। जब लोग कलीसिया को काम करता हुए देखते हैं तो परमेश्वर को महिमा मिलती है। और लोग ऐसी कलीसिया का भाग ही बनना चाहेंगे जहां अच्छे काम हो रहे हों।

इन प्रश्नों को भरने के बाद इस भाग को काट कर डाक द्वारा **"Advance Bible Course, P.O. Box No. 44, Chandigarh-160017"** पर भेजें।

भाग - 1

नाम ..... रजिस्ट्रेशन नम्बर. .....

प्रश्न

1. सच्ची आराधना की दो बातें कौन-कौन सी हैं?
2. आत्मा से आराधना करने का क्या अर्थ है?
3. सच्चाई से आराधना करने का क्या अर्थ है?
4. इस पाठ में इस्तेमाल की गई परिभाषा के अनुसार सच्ची आराधना के तीन भाग कौन-कौन से हैं?
5. यशायाह के अनुसार परमेश्वर इस्राएल का ..... है।

सही गलत बताएं

1. आराधना मुख्य रूप में परमेश्वर को सम्बोधित होनी आवश्यक है। सही/गलत
2. आराधना भक्ति, श्रद्धा या आदर देने को दिखाती है। सही/गलत
3. आराधना हमारे जीने के ढंग से अलग है इसलिए किसी का जीवन पाप से भरा होने पर सी आराधना स्वीकार हो सकती है सही/गलत
4. हम जीवन में जो कुछ भी करें वह परमेश्वर को महिमा और आदर देने के लिए होना चाहिए। सही/गलत
5. आराधना मुख्यतया व्यक्ति और परमेश्वर के बीच होती है, इसलिए हमें आस पास के हमारे साथी मसीहियों की कोई परवाह नहीं। सही/गलत

भाग - 2

नाम ..... रजिस्ट्रेश्न नम्बर .....

प्रश्न

1. यहूदियों को किस दिन आराधना करने की आज्ञा दी गई थी?
2. पुरानी वाचा को कब हटा दिया गया?
3. यीशु मुर्दों में से किस दिन जी उठा था?
4. यीशु अपने जी उठने और स्वर्ग पर उठाए जाने के बीच अपने चेलों को किस दिन दिखाई दिया?
5. आराधना में सिखाने वाले का मुख्य उद्देश्य क्या होता है?

सही गलत बताएं

1. पुरखाओं के युग में हर परिवार परमेश्वर के सामने अपने अपने बलिदान लाता और खुद उन्हें भेंट करता था। सही/गलत
2. आरम्भिक कलीसिया सब्त के दिन आराधना करती थी क्योंकि कलीसिया के अधिकतर लोग यहूदी थे। सही/गलत
3. पिन्तेकुस्त का दिन सप्ताह के पहले दिन ही आता था। सही/गलत
4. हमारी आराधना में याद रखने वाला महत्वपूर्ण नियम यह है कि सब कुछ उन्नति के लिए किया जाना चाहिए। सही/गलत
5. प्रचार करने का अवसर केवल उन्हीं को दिया जाना चाहिए जिन्होंने विशेष रूप में प्रशिक्षण पाया है यानी कलर्जी या पादरी को ही यह अधिकार है। सही/गलत

भाग - 3

नाम ..... रजिस्ट्रेशन नम्बर. .....

प्रश्न

1. प्रार्थना क्या है?
2. निरन्तर प्रार्थना करने का क्या अर्थ है?
3. हमें किसके सामने अपने पापों को मानना चाहिए?
4. वे कुछ बातें जो हमें अपनी प्रार्थनाओं में शामिल करनी चाहिए कौन सी हैं?
5. आत्मा हमारे लिए निवेदन कैसे करता है?

सही गलत बताएं

1. प्रार्थना केवल परमेश्वर की संतान के लिए रखी गई आशीष है। सही/गलत
2. किसी प्रचारक या प्रीस्ट की प्रार्थनाएं विशेष तौर पर सामर्थ से भरी और सार्थक होती हैं। सही/गलत
3. आज के आधुनिक संसार में, सार्वजनिक प्रार्थना में अगुआई कोई भी कर सकता है। सही/गलत
4. हमारी प्रार्थनाएं यीशु के नाम में होनी चाहिए जो कि हमारा मध्यस्थ है। सही/गलत
5. निर्धनों के लिए प्रार्थना करने के बाद उनकी सहायता के लिए किया गया कोई भी प्रयास परमेश्वर में और प्रार्थना की सामर्थ में विश्वास की कमी को दिखाता है। सही/गलत

भाग - 4

नाम ..... रजिस्ट्रेशन नम्बर .....

प्रश्न

1. प्रभु-भोज से जुड़े चार मुख्य विचार बताएं?
2. प्रभु-भोज में इस्तेमाल होने वाली दो चीजें कौन कौन सी हैं?
3. प्रभु-भोज में भाग लेते समय हमारे मन किस पर लगे होने चाहिए?
4. यह समझाने के लिए कि रोटी और दाख का रस प्रतीक ही हैं, कौन से दो उदाहरण दिए गए?
5. आरम्भिक कलीसिया प्रभु-भोज में कितनी कब-कब लेती थी?

सही गलत बताएं

1. जब रोटी और रस पर आशीष दी जाती है तो वे वास्तव में यीशु की देह और लहू बन जाते हैं। सही/गलत
2. यीशु ने यहूदियों के फसह के पर्व की प्रचलित चीजें लेकर उन्हें नये अर्थ दे दिए सही/गलत
3. अपनी जांच करने का अर्थ यह है कि व्यक्ति यह निष्कर्ष निकाले कि गत वर्ष में वह कितना पवित्र रहा है सही/गलत
4. प्रभु-भोज केवल मसीही लोगों के लिए है इसलिए कलीसिया के अगुओं के लिए यह सुनिश्चित करने के लिए कि केवल विश्वासी ही मसीही प्रभु-भोज में से खाएं, पहरेदारी करनी आवश्यक है। सही/गलत
5. प्रेरितों 20:7 में त्रोआस की कलीसिया मुख्यतया पौलुस से वचन सुनने के लिए इकट्ठा हुई थी। सही/गलत

भाग - 5

नाम ..... रजिस्ट्रेशन नम्बर. .....

प्रश्न

1. गाने का मुख्य उद्देश्य क्या है?
2. गाना ..... बलिदान है।
3. दो प्रकार की आज्ञाएं क्या हैं?
4. हमें अपने ..... के साज़ को बजाने की आज्ञा दी गई है।
5. मसीह के लिए मूसा की व्यवस्था के अनुसार याजक बनना क्यों असम्भव था?

सही गलत बताएं

1. भजन, स्तुतिगान या आत्मिक गीत में थोड़ा-थोड़ा फर्क है। सही/गलत
2. किसी गीत का सबसे महत्वपूर्ण भाग यह है कि सबसे सुन्दर और दिल को छू लेने वाला लगता है। सही/गलत
3. कलीसिया के आरम्भ से ही आराधना में साज़ों के इस्तेमाल पर तीखी बहस होती रही है। सही/गलत
4. बाइबल हमें साज़ों का इस्तेमाल करने से कभी रोकती नहीं इसलिए हम जानते हैं कि जब हम इसका इस्तेमाल करते हैं

भाग - 6

नाम ..... रजिस्ट्रेशन नम्बर. .....

प्रश्न

1. निर्धन विधवा ने मंदिर के भण्डार में कितना धन डाला?
2. यहूदियों को परमेश्वर को कितना देने की आज्ञा दी गई थी?
3. जैसा मन में ठाने वैसा देने का क्या अर्थ है?
4. परमेश्वर ..... से देने वाले से प्रेम रखता है।
5. देना ..... और परमेश्वर की ..... का कारण बनता है।

सही गलत बताएं

1. अपना धन बढ़ाने का बढ़िया ढंग परमेश्वर को उदारता से देना है, क्योंकि यीशु ने उन्हें जो उदारता से देते हैं आशीष देने का वायदा किया है। सही/गलत
2. जिनके पास कुछ "अतिरिक्त" धन हो केवल उन्हें ही कलीसिया के काम की सहायता के लिए देना चाहिए। सही/गलत
3. देना मुख्यतया विश्वास, प्रेम और परमेश्वर को समर्पण का एक कार्य है सही/गलत
4. जब तक हम देते हैं तब तक वास्तव में इससे कोई फर्क नहीं पड़ता कि हम क्यों देते हैं सही/गलत
5. हमारे दोनों का अधिक या कम होना यह जानने का यह एक बड़ा कारक है कि हमारा दान परमेश्वर को स्वीकार्य है या नहीं सही/गलत